ॐ नमस्ते रुद्र

मन्त्रराजप्रकाशः

ईश-कैवल्य-रुद्रहृदय

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीनिरंजनपीठाधीश्वर
महामण्डलेश्वर स्वामी महेशानन्दगिरि जी महाराज

मेहता चैरिटेबल प्रज्ञालय ट्रस्ट (रजि.)
१२२१, गली समोसा फरास खाना
दिल्ली द्वारा धर्मार्थ
वितरण

संवत् २०५३] [सन् १९९७

5-6

भूमिका

नत्त्वा पंचाक्षरीं विद्यां निर्मलां मुक्तिदां शिवाम्।
पद्मपादस्य व्याख्यानं कथ्यते लोकभाषया।।१।।

समग्र विश्व वैदिक धर्म से ही अपने आपको सुखी व समृद्ध बना सकता है। भगवान् शिव एवं भगवती पार्वती किसी देश, काल में प्रकट नहीं होते अत: ब्रह्माण्ड भर उनमें तादात्म्यानुभव कर पाते हैं। 'रुद्रो नर, उमा नारी' आदि शास्त्र इसमें प्रमाण हैं। सारे भूमण्डल में शिवलिङ्ग पूजा के अवशेष मिले हैं। भारत में मोहन्जोदडों में जो प्राचीनतम पदार्थ मिले हैं उनमें शिव की मूर्ति पद्मासन में, पशुपति रूप में तथा पार्वती की मूर्ति उत्थितासन में, मातृरूप में, योनिरूप में व त्रिकोण रूप में मिली हैं। वैदिक यज्ञ में वेदि ही योनि है तथा अग्नि ही ऊर्ध्वलिंग है। ज्ञान में मन ही त्रिशक्तिरूप होने से योनि है तथा ब्रह्माभास ही ज्ञापक होने से लिंग है। भक्ति में जीव ही योनि है तथा शिव ही उसमें स्थित लिंग है। इसी प्रकार पृथ्वी ही योनि है तथा सूर्य हो लिंग है। न जाने क्यों अनेक भारतीय भाषाओं में, विशेषत: हिन्दी में, ये दोनों शब्द केवल दैहिक अंगविशेषों में रूढ हो गये हैं। इस रूढि से हमारे शास्त्रों तथा पूज्य पदार्थों के घृणित अर्थ कुछ अर्धनास्तिक वैष्णवों ने किये एवं आंग्लों ने उन्हीं अर्थों को ईसायियत के कारण परिवृद्ध व प्रसारित किया। आशा है संस्कृतज्ञ हिन्दी भाषा वाले इस भ्रम को दूर करेंगे।

आचार्य शंकर ने वैदिक धर्म के उद्धार में जिन अस्त्रों की सहायता ली उनमें लोक सामान्य में सरलता से सिद्धान्त और क्रिया

का प्रचार भी प्रधान था। दार्शनिकों के लिये उपनिषदों में से जैसे महावाक्य का उद्धार उन्होंने किया, वैसे ही संहिता में से सारभूत पंचाक्षरी मंत्रराज का उपदेश साधकों को उन्हींने दिया। मंत्रराज में प्राणी मात्र का अधिकार सूत संहिता आदि में स्पष्ट विहित है। यह प्राणी मात्र के उद्धार का सर्वोत्तम सरलतम मार्ग है। इसमें दीक्षा विना भी जप का अधिकार इसे सहज सिद्ध करता है। इसके भाव को प्रकट करने के लिये शंकरभगवत्पाद के पट्ट शिष्य ब्रह्मसूत्रभाष्य के प्रामाणिक व्याख्याता भगवान् पद्मपाद ने जिस ग्रंथ की रचना की उसके अध्ययन से वेदान्त का सारा रहस्य तथा भक्ति व कर्म का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अतः इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जारहा है।

कलकत्ता
१३।१, बालीगंज पार्क रोड,
१ जनवरी १९६८

भगवत्पादवशानुगो
महेशानन्दगिरिः

ॐ नमः शिवाय

त्यागो हि नमसो वाच्य आनन्दः प्रकृतेस्तथा।
फलं प्रत्ययवाच्यं स्यात् त्याज्यं पत्रफलादिकम्।।१।।
त्यजामीदमिदं सर्वं चतुर्णामिह सिद्धये।

नमः शब्द का अर्थ वेदों में त्याग है। शिवाय शब्द के प्रकृति अर्थात् शिव का अर्थ आनन्द, एवं प्रत्यय आय का अर्थ फल है। जैसे साधारण पूजा में पत्ते, फूल आदि चढ़ाते हैं वैसे ही मैं इस सारे 'इदं' रूप से प्रतीयमान अर्थात् दृश्य जगत् का त्याग आनन्द की प्राप्ति के लिये करता हूँ। सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य और सार्ष्टि रूप से चारों प्रकार के आनन्द की सिद्धि हो यह भाव है।

अथवा नमसो वाच्यः प्रणामो दैन्यलब्धये।।२।।
दैन्यं सेवा तया ज्ञप्तिः सिद्धिः सर्वस्य वस्तुनः।
नमामि देवदेवेशं सकामोऽकाम एव वा।।३।।

नमः का प्रसिद्ध अर्थ प्रणाम है। मैं दीन भाव की प्राप्ति के लिये सकाम या निष्काम भाव से विष्णु आदि देवदेवों के भी ईश्वर शिव के लिये प्रणाम समर्पण करता हूँ। दीनता का अर्थ सेवा है। अतः आपकी सेवा या भक्ति करने का अवसर मुझे मिले। शिव की सेवा से ही आत्मज्ञान एवं समग्र पदार्थों की प्राप्ति तथा ऐश्वर्यों की सिद्धि हो जाती है। भाव है कि सकाम होकर शिव को प्रणाम करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा निष्काम को ज्ञान द्वारा आत्मस्थिति प्राप्त होती है।

नञा निषिध्यते भावविकृतिर्जगदात्मनः।
मसनं देवदेवेश नेह नानास्ति शब्दतः।।४।।
अयेति गमयेत्यर्थे तस्माच्छुद्धोस्मि नित्यशः।
प्रणामो देहगेहादेर् अभिमानस्य नाशनम्।।५।।

आत्मा का मसन अर्थात् परिणाम जगत् है ऐसा आत्मा से जगत् की उत्पत्ति बताने वाली श्रुतियों से प्रतीत होता है। यह परिणाम जन्म, सत्ता, बदलना, बढ़ना, घटना व नाश होना इस प्रकार के भेदों से छै प्रकार का है। अत: म: का अर्थ है परिणामी। इन सभी परिणामों का 'न' से निषेध है अत: वे परमशिव देवदेवेश ही 'नम:' हैं। यहाँ सम्बोधन में हे नमः अर्थात् हे अपरिणामी देवदेवेश यह अर्थ है इस निषेध में 'नेह नानास्ति' यह वेद ही प्रमाण है। भाव है कि जैसे वेदों ने उत्पत्ति बताई, वैसे ही वास्तविक उत्पत्ति का निषेध भी किया है। हे शिव! आप मुझे इस अपरिणामी आत्मतत्त्व को प्राप्त करावें। तभी मैं नित्य शुद्ध हूँ इस प्रकार का भाव रूप प्रणाम कर सकूंगा जिससे मेरा शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि में अहंता और घर, पत्नी, पुत्र आदि में ममता रूपी अभिमान नष्ट होना रूपी फल पैदा होगा। इस अभिमान का नाश ही वास्तविक प्रणाम है। नम:! शिव! अय= अपरिणामी! कल्याण स्वरूप! (मुझे भी वहीं) ले जाओ।

शिवो ब्रह्मादिरुपस्स्याच्छक्तिभिस्तिसृभिस्सह।
अथवा तुर्यमेव स्यान् निर्गुणम्ब्रह्मतत्परम्।।६।।
नमसो नमने शक्तिर् नमनं ध्यानमेव च।
ङेऽन्तात्तादात्म्यसम्बन्धः कथ्यते प्रत्यगात्मनोः।।७।।
अहं शिवः शिवोहं च मन्ये वेदान्तनिष्ठया।
इत्येवं नम इत्युक्तं वेदैः शास्त्रैश्च सर्वशः।।८।।

इच्छा, ज्ञान व क्रिया शक्तियों के द्वारा शिव ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शंभु रूप धारण करते हैं। इन तीन शक्तियों के लीन होने पर वे तुरीया अवश्था में निर्गुण पर ब्रह्म ही हैं। नमः का अर्थ नमन अर्थात् ध्यान ही है। चुतर्थी ङे अर्थात् आय का अर्थ एकता का सम्बन्ध है। अर्थात् शिव व प्रत्यगात्मा में तादात्म्यसम्बन्ध है। शक्तियों में भेद होने पर भी शक्तिमान् शिव में अभेद है। जीव की जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति अवस्थाओं से शून्य दशा में तथा शिव की निर्गुण दशा में कोई भेद नहीं है। अतः मैं शिव हूँ, शिव मैं हूँ' इस प्रकर वेदान्तनिष्ठा से मानता हूँ। वेदों तथा शास्त्रों द्वारा सब प्रकार से इस अभेद भाव को ही 'नमः' कहा गया है। भाव है कि निर्गुण शिव से एकता का ध्यान करना ही मंत्रार्थ है।

अथवा दास एवाहम् अहं दास इतीरणम्।
इत्येव नम इत्युक्तं वेदैः शास्त्रैश्च सर्वशः।।९।।

शिव तीनों शक्तियों से युक्त हैं, अतः मैं अपने आपको उनके समर्पण करता हूँ। इसलिये मैं दास हूँ, दास ही मैं हूँ इस प्रकार का पुनः पुनः कथन और विचार भी वेदों तथा शास्त्रों में नमः का अर्थ प्रतिपादित है। शिव के लिये ही मैं दास हूँ इस भाव से देह आदि तथा पत्नी, राज्य आदि की दासता निवृत हो कर शिव कृपा से शिव भाव की प्राप्ति हो जाती है।

अथवेदमिदं सर्वं त्यजामि परमाप्तये।
अर्थं धर्मं च कामं च वाञ्छँश्च जगदीश्वरम्।।१०।।
एतन्मन्त्रार्थतत्त्वज्ञैर् वेदवेदान्ततत्परैः।
निर्णीतं तत्त्वगर्भं यद् विज्ञेयं मुक्तिलब्धये।।११।।

परम अवस्था अर्थात् तुरीयावस्था की प्राप्ति के लिय इदन्ता से प्रतीयमान यह सब छोड़ता हूँ अर्थात् उनसे अपना अभिमान हटाता हूँ। जगदीश्वर को चाहने से अर्थ, धर्म और काम सभी को छोड़ता हूँ। इससे कर्म संन्यास रूप एषणात्यागात्मक श्रीपरमहंस अवस्था को बताया गया है। वेद व वेद के सिद्धान्त में तत्पर मंत्रराज के अर्थ के रहस्यों के ज्ञाताओं ने इसी त्रिविध पुरुषार्थ के त्याग से परमपुरुषार्थ की प्राप्ति इस मंत्र का तत्त्व बताया है। जो इसमें शिव रूप तत्त्व छिपा है उसको मुक्ति के लाभ के लिये जानना चाहिये। अतः परमहंस संन्यास के द्वारा शिव तत्त्व की इच्छा करता हुआ सर्वस्व त्याग करता हूँ यह मंत्रार्थ है। इसी अर्थ को पूर्वाचार्यों द्वारा सम्प्रदायसिद्ध कह कर शंकर भगवत्पाद द्वारा स्वीकृत बता रहे हैं। अतः इस अर्थ को मुख्य बताया जा रहा है। इस प्रकार विषय, साधन, साध्य, फल आदि समग्र वेदान्त रहस्य इस मंत्र में प्रतिपादित है।

अथवा मुक्तिलाभाय ध्येयं तत्त्वं विवेकतः।
भिन्नं बुद्ध्वा हृदा देवं मन्त्रेणेशं जगद्गुरुम्।।१२।।

शिव या कल्याण मुक्ति को पाना ही है। नमः का अर्थ ध्यान है। अतः मुक्ति की प्राप्ति के लिये तत्त्व का ध्यान करना चाहिये इस प्रकार मंत्र का अर्थ है। जीव या पुरुष को मन या प्रकृति से विवेक द्वारा अलग करके समझना एवं साक्षी रूप से अपने को जानना ही ध्यान है। हृदय या बुद्धि से जगद्गुरु ईश्वर देव को माया व तत्कार्य से भिन्न समझना द्वैत दर्शन में है पर प्रारंभिक साधन में इसकी सहायता लेकर मंत्र का जप कर सकते हैं। यहाँ पाशनिवृत्ति के लिये पशुपति का ध्यान पशु करता है। शिव शब्द की ध्वनि से पशुपति की प्रसन्नता के लिये अर्थ उपलब्ध हो जाता है।

नमेरचि नमः प्रोक्तो जन्ता स्याज्जगदीश्वरे।

तस्माद्दासोहमित्येवं मत्त्वा मां प्रापयात्मनि।।१३।।

(नम् में अच् जोड़ने से बने) नमः शब्द का अर्थ नमस्कार करने वाला साधक है। जगदीश्वर को जन्ता अर्थात् सर्व भक्षक कहा गया है। सर्व संहर्ता होने से शिव ही जन्ता हैं। अतः उनका भक्ष्य या भोग्य होने से उनका दास हूँ। ऐसा मानकर मुझे आत्मा में पहुंचा दें अर्थात् आत्म स्थिति प्रदान करें। अधिष्ठान होने से ही वे सर्व संहारक हैं। अधिष्ठान ज्ञान से अध्यस्त ज्ञान की निवृत्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। आप मेरे जीव भाव का संहार करें। शिव! मैं नमः हूँ अतः दास जानकर परमात्मप्राप्ति करावें।

जगदीश्वर के होने पर ही, उनकी कृपा से ही, जीव भोक्ता होता है। उनकी कृपा से ही आत्मस्थिति होती है। अतः आपके दास भाव को स्वीकार करके प्रणाम करने वाले मुझको आप भोग व मोक्ष प्रदान करें यह भाव है।

अस्मिञ्छेते जगत्सर्वं तन्मयं शब्दगामि यत्।

तद् वानाच् छिव इत्युक्तं कारणं ब्रह्म तत्पराः।।१४।।

न मा यस्यास्ति लक्ष्मीश सोहं देवो न संशयः।

तस्मान् मे प्रापयेहैव लक्ष्मीं विद्यां सनातनीम्।।१५।।

जो शब्द द्वारा जाना जाता है वह सम्पूर्ण जगत् शब्द का ही विकार है। 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' 'तस्योपव्याख्यानम्' आदि वेद इसमें प्रमाण है। वह सारा जगत् शिव में सोता है अर्थात् शिव ही उसके अधिष्ठान हैं। इसलिये वे वननीय या संभजनीय हैं। अथवा सारा नाम रूपात्मक प्रपंच प्रकृति में सोता है एवं उसको वनन

या व्यक्त करने से वे शिव कहे गये हैं। (शेते ऽस्मिन्निति शि-माया। शिव वन्यति इति शिवः) शिव इस प्रकार अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। तत्पराःहे शिवपरायण लोगों! आप ऐसा निश्चय करें। लक्ष्मी सनातन विद्या अर्थात् वेदविद्या का नाम है। लक्ष्मीपति! जिसे यह लक्ष्मी प्राप्त नहीं है वह जीव रूप देव अर्थात् स्वयं प्रकाश आत्मा मैं हूँ। अर्थात् मैं अज्ञानी जीव भाव में स्थित आत्मा हूँ। इसमें स्वानुभूति का प्रमाण होने से संशय नहीं है, अर्थात् वेद व युक्ति से असिद्ध होने पर भी सत्य है। मुझे इस शरीर में रहते हुये ही उस अवस्था से विद्या अवस्था को प्राप्त करावें। तात्पर्य है कि हे शिव! नमः (न मा (विद्या) वाले को) रूप मुझे शिव भाव प्राप्त करावें।

यस्मादानन्दरूपस्त्वं देवैर् वेदैर् निगद्यसे।
तस्मान् मे देहि योगीश भद्रं ज्ञानं सुभावनम्।।१६।।

चूंकि आप ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं द्वारा एवं वेदों द्वारा शिव अर्थात् आनन्दरूप कहे गये हैं अतः हे योगीश्वर आप मुझे जो अज्ञान के कारण निरानन्द हूँ (नमः) उत्तम भाव वाला कल्याण कारी ज्ञान अर्थात् आत्म ज्ञान दें। नमः को शिव के प्रति ले जावें।

यस्मात्त्वं नेतिनेतीति नञर्थं मासि वेदजम्।
तस्मान्नमोसि भद्रं मे यतो जातोऽनमो नमः।।१७।।
शिवं शिवमथाप्राप्तः शिवायेति निगद्यसे।
शिवाय मे तथा प्राप्त्या शिवायेति निगद्यसे।।१८।।

चूंकि वेद से उत्पन्न नेति नेति में नञ् के अर्थ को आप माप लेते हैं अर्थात् सर्वतोभावेन जान लेते हैं अतः आप 'नमः' हैं। सर्वनिषेध्य, निषिद्ध एवं निषेधाधिष्ठान को जानने से शिव 'नमः'

कहे गये हैं। (नं मासि इति नमः) चूंकि आपकी कृपासे अनमः मैं नमः वन गया अतः मेरा कल्याण होगया है।

सकल उपद्रवों से रहित निरतिशय अखण्ड एकरस आनन्द स्वरूप शिव भाव को (आय) आप्राप्त अर्थात् पूर्णरूप से प्राप्त होने से महेश को शास्त्रों द्वारा 'शिवाय' नाम से कहा गया है। जिस प्रकार नामरूप का सर्वथा निषेध दो नकारों से हैं वैसे ही शिव का प्रतिपादन भी दो शिव शब्दों से हैं। पाठान्तर में 'शिवः शिवमथाप्राप्तः' है। शिव भाव को पूर्णता से प्राप्त होने से सदाशिव शिवाय कहे गये हैं। सामान्यतः शवरूप को कल्याणकारी बनाने से जीव को भी शिव कहते हैं पर वे तो शिवाय हैं। हे शिवाय! मुझे भी वही अवस्था प्राप्त करा के सर्वदा शिवाय बनाओ यह भाव है।

इस अर्थ में दोनों सम्बोधन शब्दों द्वारा महेश को याद दिलाते हैं कि मुझे भी वैसा ही बनावें।

शिवां यातो महाभद्र नमोऽहं मायया ध्रुवम्।
ततो नमाय मह्यं मःशिवायं कुरु सर्वथा।।१९।।

हे महाकल्याणस्वरूप महादेव! आप शिवा अर्थात् ब्रह्मविद्या को (पतिभाव से) गये हैं। अर्थात् शिवा से आलिङ्गित ही शिव होते हैं। अतः आप शिवाय हैं। मैं माया से 'नमः' अर्थात् विद्याहीन हूँ। भाव है कि आप विद्याधीश्वर हैं एवं मैं विद्याशून्य हूँ। इसलिये मुझ नमः के लिये 'मः' इस विकारमय नामरूपात्मक प्रपंच को सब तरह शिवाय रूप अर्थात् ब्रह्मरूप कर देवें। (मस्यत इति मः) तात्पर्य है कि सारा देह गेहादि प्रपंच ब्रह्मरूप से भासमान होने लगे। अथवा कल्याणमय आप हैं एवं मैं कल्याण से रहित हूँ। अतः आप मुझे व मेरे लिये सभी पदार्थ या लोगों को कल्याणमय बना देवें। सकाम

साधक शिवा से महाशक्ति, तथा निष्काम महाविद्या लेते हैं अतः यह अर्थभेद है। सकाम सर्वत्र कल्याण चाहता है, व निष्काम सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि।

शिवम् एषि यतो ज्ञप्त्या शिवायस् त्वं प्रपठ्यसे।
न ते माया यतो ज्ञप्त्या नमो वेदैः प्रपठ्यते।।२०।।

चूंकि आत्माकारवृत्ति रूप ज्ञान से शिवभाव को प्राप्त करते हो अर्थात् अविद्या को नष्ट करके आनन्द में स्थित होते हो अतः वेदों में आप शिवाय कहे जाते हो। पुनः चूंकि ज्ञान से आप में माया नहीं है अतः वेदों के द्वारा नमः भी कहे जाते हो। अतः ज्ञानावस्था में मायाहीन निर्गुण भाव को मुझे भी प्राप्त करा दो यह भाव है। जिस उपाधि में शिव का ध्यान किया जाता है वही उपाधि अपने में प्रकट हो जाती है इस सिद्धान्त के अनुसार इन दोनों सम्बोधनों से ज्ञान प्राप्ति की प्रार्थना है।

नमोहं च शिवायोहं नमो मह्यं नमोनमः।
नमो नमाय शुद्धाय मंगलाय नमो नमः।।२१।।
नमो नमसनं शम्भो निराकाराय ते नमः।
निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं इत्याद्याश्श्रुतयो जगुः।।२२।।
नमो ब्रह्म निराकारं शिवायं शिव सर्वदा।
अतोऽहं च न मा भद्र शिवायोहं न संशयः।।२३।।

उपर्युक्त सभी अर्थों को संक्षेप में बताया जा रहा है। मैं नमः हूँ एवं मैं ही शिवाय हूँ। भाव है कि मंत्रराज की साधना करके मैं मायारहित शिव भाव को प्राप्त कर गया हूँ। ऐसे मेरे साक्षीरूप अहं

को बार बार नमस्कार है। इस प्रकार परमेश्वर को अपरोक्ष बता कर अपरोक्ष आत्मतत्त्व को नमस्कार ज्ञानी जन सदा करते हैं। अहं प्रत्यय में ही शिव का सर्वश्रेष्ठ प्रकाश होने से अहंग्रहोपासना की उत्तमता सर्वत्र वेदान्तों में प्रतिपादित है।

पुनः नमः अर्थात् माया रहित शुद्ध मंगल रूप के प्रति शरीर, वाणी व मन से नमस्कार है। हे शंभु! हे नमः! चूंकि आपमें कोई विकार नहीं होता अतः आपके निराकार रूप को नमन है। इसमें श्वेताश्वतर शाखा का आपको निर्गुण निष्क्रिय व शान्त बताने वाला मंत्र प्रमाण है। हे शिव! आप हमेशा नमः (माया, तत्कार्य व तदधिष्ठान को सब प्रकार से जानने वाले) हैं, सर्वव्यापक (ब्रह्म) हैं, आकारों से रहित हैं (निरवयव हैं) तथा शिवाय (शिवा से माधुर्य भाव में संश्लिष्ट) हैं। इस प्रकार आपकी अखण्ड व्यापक सत्ता में सबका समावेश होने से मैं भी भिन्न सत्ता वाला नहीं हो सकता। अतः आपसे शुद्ध रूप में अभिन्न होने से मैं भी नमः (परिणामरहित) तथा शिवाय (ब्रह्मविद्या को प्राप्त) हूँ। हे भद्र! आपकी कृपा से मैं ऐसा बन सका हूँ यह निश्चित है।

ईशावास्योपनिषद्

मूलमंत्रपाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

ॐ ईशावास्यमिदँ, सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।१।।
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवन्त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।२।।
असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।३।।
अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोन्यानत्येति तिष्ठन्तस्मिन्नपी मातरिश्वा दधाति।।४।।
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।५।।
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानन्ततो न विजुगुप्सते।।६।।
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कश्शोक एकत्वमनुपश्यतः।।७।।
स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूस्स्वयम्भूर्याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छा-
श्वतीभ्यस्समाभ्यः।।८।।

अन्धतमः प्रविशन्ति ये विद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः।।९।।
अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।१०।।
विद्याञ्चविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।११।।
अन्धतमः प्रविशन्ति येसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः।।१२।।
अन्यदेवाहुस्सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।१३।।
सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युन्तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।१४।।
हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वम्पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।१५।।
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह।
तेजो यत्ते रूपङ्कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि।
योसावसौ पुरुषस्सोहमस्मि।।१६।।
वायुरनिलममृतमथेदम्भस्मान्तं शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर।।१७।।
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम।।१८।।

ॐ।। पूर्णमद इति। ॐ शान्तिः ३।।

पदच्छेदः

ईशा वास्यम् इदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।

सान्वयार्थः

यत् = जो
किम् = कुछ
च = भी
जगत्याम् = ब्रह्माण्ड में
जगत् = जड चेतन है,
इदम् = वह (प्रत्यक्षानुभूत)
सर्वम् = सारा
ईशा = महेश्वर से
वास्यम् = ढक देना चाहिये।

तेन = उस
त्यक्तेन = त्याग (के बल) से (ही)
भुंजीया: = (अपने आप का) पालन अर्थात् रक्षण करो।
मा = मत
गृधः = इच्छाएँ करो (विषयों का लोभ मत करो।)
धनम् = धन
कस्य स्विद् = किसका है? (किसी का भी नहीं।)

तात्पर्य

संसार में नाम-रूप व क्रिया-रूप में जो भी अनुभूत होता है वह महेश्वर से अभिन्न है। अज्ञान से अलग प्रतीत होते हुए भी ज्ञान से उसे शिवरूप ही देखे। वही इसका एकमात्र शासक है। इस प्रकार की दृष्टि से संसार के सभी नामरूपादि का त्याग हो जाता है। यह त्याग ही हमारा रक्षण या पालन करता है, क्योंकि सर्वत्र शिवदृष्टि करने वाले को कभी भी राग, द्वेष, शोक, मोह

आदि नहीं सता सकते। अतः सभी दुःखों से यह त्याग बचा लेता है। परन्तु इस त्याग को पुष्ट करने के लिये यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि पुत्र स्त्री-संपत्ति-विद्या-पुण्य आदि धन किसी के नहीं है, वरन् केवल शिव के ही है; अतः उनका लोभ या तृष्णा कभी न करे।

—२—

पदच्छेदः

कुर्वन् एव इह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।
एवं त्वयि न अन्यथा इतः अस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

सान्वयार्थः

इह	= यहाँ (इस मानव लोक में)	नरे	= मनुष्य में (अपने को मनुष्य मानने वाले में)
कर्माणि	= कर्मों को (शास्त्र प्रतिपादित)	कर्म	= कर्म (दोष व फल)
		न	= नहीं
कुर्वन्	= करते हुए	लिप्यते	= लिपटेंगे (लगेंगे)।
एव	= ही		
शतम्	= सौ (पूर्णायु)	इतः	= इससे
समाः	= वर्षों तक	अन्यथा	= भिन्न (दूसरा कोई अलग उपाय)
जिजीविषेत्	= जीने की इच्छा करे।		
एवम्	= इस प्रकार	न	= नहीं
त्वयि	= तुझ	अस्ति	= है।

तात्पर्य

प्रथम मंत्र से उत्तम अधिकारी को निवृत्ति मार्ग का उपदेश किया। इस मंत्र में प्रवृत्ति के अधिकारी को उपाय बताया। इन दो से भिन्न कोई तीसरा रास्ता वेदों में नहीं है। कर्म करते हुए ही जीवे। उनमें फलों की आसक्ति न रखे। न प्रमाद से कर्मों का त्याग ही करे। न सौ वर्ष या पूर्ण आयु से पहले धबराहट या दुःख से मरना ही चाहे। इस प्रकार शास्त्रोक्त नित्य व नैमित्तिक आदि स्वधर्म का पालन करते हुए मानव भी सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करते हुए क्रम मुक्ति के अधिकारी बन जाते है; एवं उन्हें कर्मों के दोषों में फंसना नहीं पड़ता।

—३—

पदच्छेदः

असुर्याः नाम ते लोकाः अन्धेन तमसा आवृताः।
तान् ते प्रेत्य अभिगच्छन्ति ये के च आत्महनः जनाः।।

सान्वयार्थः

ते = वे (जो)
अन्धेन = अंधकार से (अज्ञान से)
तमसा = (और) तमोगुण से
आवृताः = ढके हुये
लोकाः = लोक (कर्मफल भोग के स्थान)
असुर्याः = असुर (प्राणों में रमण करने वाले)
नाम = नाम (से कहे जाते हैं।)
तान् = उनको

ये = जो
के = कोई
च = भी
आत्महनः = आत्महत्यारे (विद्यमान शिव को न मानने या जानने वाले)
जनाः = प्राणी (हैं)
ते = वे
प्रेत्य = मरकर
अभिगच्छन्ति = जाते हैं।

तात्पर्य

जो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों शास्त्रीय मार्गों का त्याग कर केवल अपने प्राणों को प्रसन्न करने में लगे रहते हैं वे असुर कहे जाते हैं। परमात्मा की तरफ दृष्टि न रखना ही परमात्मा की हत्या है। अतः असुर ही आत्महत्यारे हैं। वे मरकर पशुपक्षी कीटपतंगादि एवं नारकीय योनियों को प्राप्त कर अपने दुष्कर्मों का फल भोगते हैं और जन्ममरण के चक्र में पड़े रहते हैं। इस प्रकार सभी प्राणियों की गति श्रुति ने बता दी। आत्मज्ञानी तुरन्त जीवन्मुक्ति पाते हैं। कर्मी क्रम मुक्ति पाते हैं। अज्ञानान्धकार में पड़े भोगी जन्ममरण के चक्र में घूमकर कर्मफलों को भोगते रहते हैं।

—४—

पदच्छेदः

अनेजद् एकं मनसः जीवयः न एनद् देवाः आप्नुवन् पूर्वम् अर्षत्।
तत् धावतः अन्यान् अत्येति तिष्ठत् तस्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति।।

सान्वयार्थः

एकम्	= (सर्वभूतों में स्थित) एक है।	न	= नहीं
अनेजत्	= (अपने स्वरूप से) हिले विना ही	आप्नुवन्	= पा सकते हैं।
मनसः	= मन से (भी)	पूर्वम्	= पहले ही
जवीयः	= तेज (है)।	अर्षत्	= व्यापक है।
एनत्	= इस (महेश्वर) को	तत्	= वह (महेश्वर)
देवाः	= देवता (इन्द्रियाँ) भी	तिष्ठत्	= खड़े हुए ही
		धावतः	= दौड़ते हुए
		अन्यान्	= दूसरों को

अत्येति	= (पीछे छोड़) आगे जाता है।	मातरिश्वा	= (संसार का नियामक) सूत्रात्मा
तस्मिन्	= उसके होने से (सदाशिव के कारण)	अपः	= कर्म (फलों) का
		दधाति	= वितरण करता है।

तात्पर्य

जिस ब्रह्म के ज्ञान से प्रथम मंत्र में मोक्ष बताया; जिस महेश्वर की आज्ञा के पालन से कर्म करते हुए भी मुक्ति की संभावना द्वितीय मंत्र से बताई; जिस शिवतत्त्व की अवहेलना से आसुरी योनि की प्राप्ति तृतीय मंत्र में प्रतिपादित की गई; उसी परमात्मतत्त्व का अब वर्णन करते हैं। वह सभी प्राणियों में रहते हुए भी अद्वितीय ही है। मन के संकल्पविकल्पों से भी वह अति दूर है अतः उसे मन से भी तेज कहा जाता है। फिर भी वह अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता। देवगण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम आदि भी उसका पार नहीं पा सकते। अथवा केवल मन द्वारा न जानने लायक बाहिर के रूप, रस, गन्ध आदि पदार्थों को जानने की सामर्थ्य वाली इन्द्रियाँ भी उसे नहीं जान सकतीं। वह आदि काल से ही सर्वत्र गया हुआ विद्यमान है अतः काल-देश आदि सभी की अपेक्षा व्यापक है। इसी व्यापकता के कारण जहाँ कहीं जो कोई भी जावे वहाँ वह पहले ही पहुँचा हुआ होने के कारण सबसे आगे शीघ्र गति से गया हुआ मालूम होने पर भी वस्तुतः अचल है। जिस प्रकार आकाश (Space) विना चले ही जहाँ जावे वहाँ पहुँचा हुआ होता है वैसा ही यहाँ भी समझना योग्य है। मातरिश्वा अर्थात् सूत्रात्मा या प्राण। सभी कर्मफल प्राण द्वारा ही संभव है। प्राण जाने के बाद कर्मफल संभव नहीं। परन्तु सदाशिव के रहने पर ही प्राण भी कर्मफल भोग सकता है। गहरी

नींद में प्राण होने पर भी शिवतत्त्व का चेतनभाव से स्पर्श न होने के कारण भोग संभव नहीं यह सर्वानुभव सिद्ध है। अतः आत्मा के कारण ही कर्मफल वितरण होता है। अथवा सूत्रात्मा सदाशिव के भय से ही कर्मों का ठीक ठीक प्रकार से ठीक ठीक समय पर वितरण करता है। अथवा वायु शिव की क्रिया शक्ति है। जो भी अप् या द्रवरूप श्रद्धा क्रिया में प्रकट होती है वह शिव की शक्ति का ही प्राकट्य है। शिव की क्रिया शक्ति के बल से ही ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं।

—५—

पदच्छेदः

तत् एजति, तत् न एजति, तत् दूरे, तत् उ अन्तिके।
तत् अन्तः अस्य सर्वस्य, तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः।।

सान्वयार्थः

तत् = वह (महादेव) [प्राणिरूप से]
एजति = चलता है। (एवं)
तत् = वही (पृथ्वी, वृक्ष आदि रूप से)
न = नहीं
एजति = चलता है।
तत् = वही (सूर्य, इन्द्र, विष्णु आदि रूप से)
दूरे = दूर है। (अथवा अज्ञान के कारण अपने से दूर है।)
तत् = वह (अन्तर्यामी रूप से या अहं रूप से)
उ = ही
अन्तिके = पास से भी पास है।
तत् = वह
अस्य = इस

सर्वस्य	= सभी (नाम रूप क्रिया) के	उ	= ही
अन्तः	= अन्दर (सत्ता रूप से) है।	अस्य	= इस
तत्	= वह	सर्वस्य	= सभी के
		बाह्यतः	= बाहिर (अस्पृष्ट) भी है।

तात्पर्य

पूर्व मंत्र में परमेश्वर या कारणरूप से सदाशिव का वर्णन करके इस मंत्र में कार्य रूप से उसी का वर्णन है। जीव एवं जगत् रूप से भी वही है, एवं जीवजगत् के ईश्वररूप से भी वही है यह बताने से दोनों की एकता स्फुट रूप से प्रतिपादित है। चलने वाले और अचल रूप से वही है। नाम रूप के विकारों में भी वही है परन्तु नामरूप के विकारों से रहित होने से उन सभी विकारों से बाहिर भी वह है। शासक रूप से उसकी अज्ञानावस्था में दूर की कल्पना होने पर भी हृदय में चेतना रूप से उसका स्फुरण होने से वह समीपतम है।

—६—

पदच्छेदः

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति।
सर्वभूतेषु च आत्मानं ततः न विजुगुप्सते।।

सान्वयार्थः

यः	= जो	सर्वाणि	= सभी (ब्रह्मा से घास तक)
तु	= तो (आत्मज्ञानी)		

भूतानि	= पदार्थों को	आत्मानम्	= आत्मा (अपने आप) को
आत्मनि	= आत्मा में (अपने आप में)	अनुपश्यति	= देखता है (वह)
च	= और	ततः	= इसी कारण से
सर्वभूतेषु	= सभी पदार्थों (जड, चेतन) में	एव	= ही
		न	= नहीं
		विजुगुप्सते	= घृणा करता है।

तात्पर्य

प्रथम मंत्रोक्त आत्मज्ञान का फल षष्ठ व सप्तम मंत्र में बताते हुए विधि निषेध से अतीत जीवन्मुक्त का स्वरूप प्रतिपादित करते हैं। समग्र विश्व को आत्मा से भिन्न न समझना एवं समस्त प्राणियों में अपने को ही आत्मरूप से समझना आवश्यक है। 'सब मुझ में हैं एवं सब में मैं हूँ' यही जीवन्मुक्त की अनुभूति है। अपने से भिन्न मानने पर ही घृणा संभव है। अत्यन्त शुद्ध निर्मल आत्म स्वरूप को निरन्तर अनुभव करने से कहीं भी घृणा संभव नहीं। इसीलिये वह निन्दाशून्य हो जाता है। यह दर्शन ज्ञाननेत्र से ही संभव है। प्रथम मंत्र में 'ईश' = महेश्वर को सर्वरूप बताया एवं यहाँ आत्मा को। अतः महेश्वर एवं आत्मा का अभेद इष्ट है।

—७—

पदच्छेदः

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् विजानतः।
तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वम् अनुपश्यतः॥

सर्वस्य	= सभी (नाम रूप क्रिया) के	उ	= ही
अन्तः	= अन्दर (सत्ता रूप से) है।	अस्य	= इस
तत्	= वह	सर्वस्य	= सभी के
		बाह्यतः	= बाहिर (अस्पृष्ट) भी है।

तात्पर्य

पूर्व मंत्र में परमेश्वर या कारणरूप से सदाशिव का वर्णन करके इस मंत्र में कार्य रूप से उसी का वर्णन है। जीव एवं जगत् रूप से भी वही है, एवं जीवजगत् के ईश्वररूप से भी वही है यह बताने से दोनों की एकता स्फुट रूप से प्रतिपादित है। चलने वाले और अचल रूप से वही है। नाम रूप के विकारों में भी वही है परन्तु नामरूप के विकारों से रहित होने से उन सभी विकारों से बाहिर भी वह है। शासक रूप से उसकी अज्ञानावस्था में दूर की कल्पना होने पर भी हृदय में चेतना रूप से उसका स्फुरण होने से वह समीपतम है।

—६—

पदच्छेदः

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति।
सर्वभूतेषु च आत्मानं ततः न विजुगुप्सते।।

सान्वयार्थः

यः	= जो	सर्वाणि	= सभी (ब्रह्मा से घास तक)
तु	= तो (आत्मज्ञानी)		

भूतानि	= पदार्थों को	आत्मानम्	= आत्मा (अपने आप) को
आत्मनि	= आत्मा में (अपने आप में)	अनुपश्यति	= देखता है (वह)
च	= और	ततः	= इसी कारण से
सर्वभूतेषु	= सभी पदार्थों (जड, चेतन) में	एव	= ही
		न	= नहीं
		विजुगुप्सते	= घृणा करता है।

तात्पर्य

प्रथम मंत्रोक्त आत्मज्ञान का फल षष्ठ व सप्तम मंत्र में बताते हुए विधि निषेध से अतीत जीवन्मुक्त का स्वरूप प्रतिपादित करते हैं। समग्र विश्व को आत्मा से भिन्न न समझना एवं समस्त प्राणियों में अपने को ही आत्मरूप से समझना आवश्यक है। 'सब मुझ में हैं एवं सब में मैं हूँ' यही जीवन्मुक्त की अनुभूति है। अपने से भिन्न मानने पर ही घृणा संभव है। अत्यन्त शुद्ध निर्मल आत्म स्वरूप को निरन्तर अनुभव करने से कहीं भी घृणा संभव नहीं। इसीलिये वह निन्दाशून्य हो जाता है। यह दर्शन ज्ञाननेत्र से ही संभव है। प्रथम मंत्र में 'ईश' = महेश्वर को सर्वरूप बताया एवं यहाँ आत्मा को। अतः महेश्वर एवं आत्मा का अभेद इष्ट है।

—७—

पदच्छेदः

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् विजानतः।
तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वम् अनुपश्यतः।।

सान्वयार्थः

यस्मिन्	= जिस काल (अवस्था) में	एकत्वम्	= (शिव, जीव और जगत् की) एकता को
विजानतः	= आत्मसाक्षात्कारी के लिये	अनुपश्यतः	=देखने वाले को
सर्वाणि	= सभी	कः	= कहाँ, कैसा और कौन सा
भतानि	= (जड चेतन) पदार्थ	मोहः	= मोह (व)
[illegible]	= आत्मा	कः	= कहाँ, कैसा और कौन सा
[illegible]	= ही	शोकः	= शोक (हो सकता है)?
[illegible]भूत्	= हो गये हों,		
तत्र	= उस काल में		

तात्पर्य

शिव आनन्दरूप है अतः जब सभी पदार्थ शिव स्वरूप हो जाते हैं तब सभी देश, काल और वस्तु आनन्द रूप हो जावें यह स्वाभाविक है। सभी कल्पित, अकल्पित नाम, रूप और क्रियाएँ अपने रूप को छोड़ कर आनन्दमय हो जाते हैं। शिव निरतिशय आनन्दस्वरूप होने से दुःख से सर्वथा अछूते हैं। उनको न जानने से ही 'पुत्र मर गया, धन नष्ट हो गया' आदि शोक संभव है। इसी शिव को आत्मस्वरूप से अभिन्न न जानकर 'पुत्र सम्पत्ति, स्त्री' आदि को सुख साधन समझ कर उनकी कामना करते हैं। उनके लिये देवपूजा करते हैं। न मिलने पर विक्षिप्त होते हैं। विक्षेप ही दुःखवृक्ष का बीज है। इसका मूल भी आत्मा को शिव से भिन्न समझना रूपी अज्ञान या मोह है। यही आवरण है। सद्गाशिव तत्त्व में स्थित होने पर काम कर्म का बीज अविद्या नष्ट होने से संसार का कारण सहित नाश होकर परमानन्द मिलता है।

—८—

पदच्छेदः

स: परि अगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्
अस्नाविरं शुद्धम् अपापविद्धम्।
कविः मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतः अर्थान्
व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

सान्वयार्थः

सः = वह (प्रसिद्ध महेश्वर)
परि = सर्वत्र
अगात् = गया हुआ (व्यापक) है।
शुक्रम् = सफेद ज्योति स्वरूप,
अकायम् = सूक्ष्म शरीर से रहित,
अव्रणम् = अक्षत (फोड़े, चोटों से रहित),
अस्नाविरम् = स्नायुओं से रहित,
शुद्धम् = दोषों या पापों से रहित,
अपापविद्धम्= धर्म, अधर्म, वासना से सर्वदा अस्पृष्ट,
कविः = क्रान्तदर्शी
मनीषी = (सबके) मन का शासक,
परिभूः = सबसे ऊपर (सब को दबाने वाला)
स्वयंभूः = स्वतः, दूसरे के विना होने वाला है। (स्वतंत्र)
याथातथ्यतः= जैसा जैसा ठीक है वैसा वैसा
अर्थान् = पदार्थ को (नियम एवं कर्म तथा फल को)
शाश्वतीभ्यः= अनन्त (नित्य)
समाभ्यः = वर्षों के लिये (अधीश्वरों को)
व्यदधात् = विहित किया या बांटा। (उंसी भगवान् ने)

तात्पर्य

सदाशिव के कारणत्व व कार्यत्व का वर्णन करके आत्मज्ञान का फल बताया। अब उपासना व कर्म रूप प्रवृत्ति मार्ग का सह समुच्चय प्रतिपादित करना है। ज्ञान प्रकरण की परिसमाप्ति से प्रथम मंत्र का प्रकरण समाप्त होकर अब द्वितीय मंत्र का विस्तार श्रुति करती है। उपास्य तत्त्व रूपी महेश्वर का इसमें वर्णन है। वह सदाशिव ही महेश्वर भाव से कर्म व उसके फलों का सम्बन्ध सृष्टि के आदि में बांट देता है। कर्तव्यों का निरूपण वेदों में है। वेद का उपदेश ब्रह्मा आदि प्रजापतियों को जो 'सम' नाम वाले हैं प्रथम मिलता है एवं वे नियम अन्त तक स्थिर रहते हैं। महेश्वर स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीनों शरीरों से रहित है यह अव्रणमस्नाविरं, अकायं एवं शुद्धं से क्रमशः बताया। सभी कार्य करते हुये भी उसका किसी पाप से संस्पर्श संभव नहीं। विना शरीर के भी सब कुछ उत्पन्न करना ही उसकी अचिन्त्य शक्ति है। जो इस प्रकार ब्रह्म भाव को प्राप्त करता है वह अनन्तकाल तक पदार्थों का यथातथा भोग करके भी शुद्ध व पापमुक्त रहता है यह निर्देश भी यहाँ है। 'परि अगात्' अच्छी तरह से जाना। जिसने 'महेश्वरोहं' ऐसा अनुभव किया वही कवि आदि है। माया से विविध रूपों वाला बनते हुए भी (परिभूः) स्वयंभू ही बना रहता है। अविद्या दशा में ही इस समय ऐसा ऐसा, इस साधन से यह साध्य, एवं चेतन अचेतन की विविध रूप से कल्पना का विधान वह महेश्वर ही करता है। यही उपास्य एवं कर्मफलदाता है। इस प्रकार इस मंत्र से महेश्वर का स्वरूप एवं अन्तिम फल दोनों बताये गये हैं।

—९—

पदच्छेदः

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते।
ततः भूयः इव ते तमः ये उ विद्यायां रताः।।

सान्वयार्थः

ये	= जो	विद्यायाम्	= उपासना में ही (देव ज्ञान में)
अविद्याम्	= कर्म (में ही)	रताः	= तत्परता से लगते हैं
उपासते	= तत्पर रहते हैं (वे)	ते	= वे
अन्धम्	= घोर	ततः	= उन से भी (कर्मियों से)
तमः	= तमोलोक में	भूयः	= ज्यादा
प्रविशन्ति	= प्रवेश करते हैं।	तमः	= तमोलोक में
उ	= एवं (दूसरी तरफ)	इव	= ही (जाते हैं)।
ये	= जो		

तात्पर्य

यद्यपि वेदों ने केवल कर्म से पितृलोक एवं केवल उपासना से देवलोक की प्राप्ति बताई है, तथापि वहाँ से लौटना पड़ता है एवं वहाँ का आनन्द भी सातिशय है; तथा वहाँ भी देहादि में अभिमान रहता है अतः यहाँ उसकी तमोलोक संज्ञा है। कर्म व उपासना को साथ करने से ही शिव की प्रसन्नता से क्रम मुक्ति का द्वार खुलता है, जहाँ निरतिशय आनन्द है एवं फिर नीचे नहीं आना पड़ता। अतः उसकी प्रशंसा है।

वस्तुत: जो अधिकारी न आत्मज्ञानी है एवं न पुष्कल वैराग्य वाला है फिर भी संसार में अत्यधिक प्रीति से रहित एवं परमात्म प्राप्ति की अभिलाषा वाला है वही यहाँ इष्ट है। संसार में आसक्त तो कर्म का ही अधिकारी है। 'मैं और मेरा' का अभिमान ही 'अन्धं तम:' में प्रवेश है। 'मैं ब्रह्म हूँ' कहकर विना आत्मसाक्षात्कार के कर्मत्याग से तो और भी नीचे गिरता है। देवता की भक्ति भी कर्म के विना हानिप्रद हो जाती है। कर्म ही अशुद्ध अन्त:करण को शुद्ध करने का उपाय है और कर्मत्याग से प्रत्यवायरूपी दोष ऊपर से लगता है। अत: आत्मज्ञान के पूर्व कभी भी कर्म न छोड़े।

—१०—

पदच्छेद:

अन्यत् एव आहु: विद्यया अन्यत् आहु: अविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये न: तत् विचचक्षिरे।।

सान्वयार्थ:

विद्यया	= उपासना से	आहु:	= कहा है (वेदों ने)
अन्यत्	= दूसरा (फल)	इति	= ऐसा
एव	= ही	ये	= जिन्होंने
आहु:	= कहा है (वेदों ने),	न:	= हमें
अविद्यया	= कर्म से	तत्	= उस (तत्त्व) को
अन्यत्	= दूसरा (फल)	विचचक्षिरे	= बताया था,

धीराणाम् = (उन) प्रशस्त बुद्धि वालों का	शुश्रुम = (वचन) हमने सुना था।

तात्पर्य

यहाँ श्रुति स्वयं गुरु को उपदेश की विधि बताती है। हमेशा अपने गुरुओं के प्रमाण से कहना चाहिए, स्वतः अभिमान पूर्वक नहीं। वेद के सर्व रहस्यों का तत्त्व जानना ही धीरों का काम है।

—११—

पदच्छेदः

विद्यां च अविद्यां च यः तत् वेद उभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते।।

सान्वयार्थः

यः = जो (साधक)	अविद्यया = (वही साधक). कर्म से
तत् = उन	मृत्युम् = प्रमाद या अशास्त्रीय कर्म रूपी मृत्यु को
उभयम् = दोनों	तीर्त्वा = पार करके
विद्याम् = उपासना	विद्यया = उपासना से
च = और	अमृतम् = महादेव भाव रूपी मोक्ष को
अविद्याम् = कर्म को	अश्नुते = पा लेता है
च = समुच्चय से	
सह = साथ साथ	
वेद = (अनुष्ठान) सांधता है,	

तात्पर्य

सभी कर्म व उपासना जिस फल को उत्पन्न करते हैं वह अन्त में नष्ट होता है, अतः उस फल को मृत्यु कहा गया है। इसीलिये स्वाभाविक कर्म व ज्ञान भी मृत्यु कहे गये हैं। इस नश्वर फल को प्राप्त न करना ही मृत्यु को पार करना है। अतः कर्म योग का यही फल है। परमात्मा से एक होना ही अमर बनना या मोक्ष पाना है। वस्तुतः कर्म में शिव दृष्टि ही उपासना का सहसमुच्चय है। सारे कर्म प्रतीक हैं। उन प्रतीकताओं को जानकर कर्म करना ही कर्म और उपासनाओं का साथ साथ करना है। जीवन के सभी कर्मों को इस प्रकार करना ही जीवन यज्ञ है। विद्या का अर्थ यहाँ श्रवण से उत्पन्न कच्चा ज्ञान भी लिया जा सकता है। अतः जो कर्म करेगा उसके ज्ञान का प्रतिबन्धक रूपी मृत्यु हटकर उसे मोक्ष यहीं प्राप्त हो सकेगा। हर हालत में वैदिक सिद्धान्त में दृढ़ अनुभूति के पूर्व कर्म व उपासना करते रहना आवश्यक है।

—१२—

पदच्छेदः

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये असंभूतिम् उपासते।
ततः भूयः इव ते तमः ये उ संभूत्यां रताः।।

सान्वयार्थः

ये	= जो	उपासते	= उपासना करते हैं (वे)
असंभूतिम्	= कारण ब्रह्म निराकार, समष्टि की	अन्धम्	= घोर

तमः	= तमोलोक में	रताः	= रति करते हैं।
प्रविशन्ति	= प्रवेश करते हैं।	ते	= वे
उ	= एवं (दूसरी तरफ)	ततः	= उनसे भी
ये	= जो	भूयः	= अधिक
संभूत्याम्	= कार्य ब्रह्म, साकार, व्यष्टि में	तमः	= तमोलोक में
		इव	= ही (जाते हैं)।

तात्पर्य

कर्म व उपासना का साथ साथ विधान करके अब कारण व कार्य रूप से, या निराकार व साकार रूप से, या समष्टि या व्यष्टि रूप से साथ-साथ उपासना को बताना है। इनमें से केवल एक को मानना वेद को इष्ट नहीं। इसीलिये शिवलिंग में शिव व शक्ति की साथ ही साथ उपासना होती है। कुछ लोग सृष्टि से भिन्न परमेश्वर को केवल कारण मानते हैं, एवं अन्य लोग सृष्टि को ही परमेश्वर मानते हैं; परन्तु वेद कहता है कि सृष्टि भी परमेश्वर है एवं सृष्टि का नियामक एवं निर्माता परमेश्वर सृष्टि से अतीत भी है। इसी प्रकार वह निराकार भी है और साकार भी है। केवल समष्टि या समाज को ही मानना वैदिक धर्म नहीं, और केवल व्यक्तिगत उन्नति में लगे रहना भी इष्ट नहीं।

संभूति का अर्थ जन्म भी होता है। उत्पन्न होने से साकार ब्रह्म आदि भी संभूति कहे जा सकते हैं। वेद कहता है कि जिसका जन्म नहीं होता वह असंभूति आत्मतत्त्व है; पर 'हमारा जन्म नहीं होगा' ऐसा मानकर परलोक को न मानना भी असंभूति की उपासना ही है। वह भी नरक प्राप्ति का ही साधन है। एवं हमें जन्म-मरण के

पदच्छेदः

संभूतिं च विनाशं च यः तत् वेद उभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्या अमृतम् अश्नुते।।

सान्वयार्थः

यः	= जो (साधक)
तत्	= उन
संभूतिम्	= असंभूति (समष्टि, निराकार)
च	= और
विनाशम्	= अविनाश को (व्यष्टि साकार)
च	= समुच्चय से
उभयम्	= दोनों को
सह	= साथ साथ
वेद	= साधता (उपासना करता) है,
विनाशेन	= (वही साधक) संभूति से (कार्य, व्यष्टि, साकार)
मृत्युम्	= अनैश्वर्य आदि मृत्यु को
तीर्त्वा	= पार करके
संभूत्या	= असंभूति से (कारण, समष्टि)
अमृतम्	= मोक्ष को
अश्नुते	= प्राप्त करता है।

तात्पर्य

वेदों का आदेश है कि कर्म व उपासना और समष्टि व व्यष्टि या एक शब्द में कहें तो शिव-शक्ति दोनों में अभिन्न दृष्टि रखनी चाहिए। इस मंत्र में संभूति और विनाश के अर्थ विपर्यय द्वारा बताया गया है कि जो शिव है वही शक्ति है और जो शक्ति है वही शिव है। सर्वत्र अभेददर्शन ही कर्तव्य है।

—१५—

पदच्छेद:

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

सान्वयार्थ:

हिरण्मयेन = ज्योतिर्मय (या नाम रूप)	त्वम् = तुम
पात्रेण = ढक्कन से	तत् = उसको
सत्यस्य = सत्य महेश्वर का	सत्यधर्माय = सत्य व धर्म का पालन करने वाले को
मुखम् = मुख या द्वार	दृष्टये = (शिव) दर्शन के लिये
अपिहितम् = ढका हुआ है।	अपावृणु = उघाड़ दो।
पूषन् = हे पूषा! (पोषण कर्ता महेश्वर)	

तात्पर्य

कर्म व उपासना के अधिकारी को नित्य करने योग्य प्रार्थना का अब उपदेश करते हैं। कर्म व उपासना स्वत: मोक्ष नहीं देते, वरन् उनसे प्रसन्न हुए श्री दक्षिणामूर्ति ही मोक्ष देते हैं। श्री शंकर की अष्टमूर्ति में सूर्य या पूषा का विशेष स्थान है। सूर्य को ईशान मूर्ति माना गया है; 'ईशान: सर्वविद्यानां' आदि श्रुतियों में ईशानमूर्ति विद्या एवं विशेषत: ब्रह्मविद्या सम्बन्धिनी मूर्ति है। जिस प्रकार किरण समूह से पूर्ण होने से सूर्य पूषा हैं वैसे ही विद्या कलाओं से पूर्ण होने के कारण सदाशिव भी पूषा हैं। 'शंकर सवितानन:' आदि पुराण

यही बताते हैं। अतः यहाँ पूषन् से यह ध्वनित किया जा रहा है कि ब्रह्मविद्या का पोषण करें।

हिरण्मय अर्थात् सोने का विकार। पूषा का या सूर्य का रंग हिरण्मय है। सूर्य या ईशानमूर्ति के बाह्य रंग या ऐश्वर्य से उनका वास्तविक तत्त्व छिपा रहता है। अथवा हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा की सृष्टि से शिवतत्त्व छिपा है। जो हितकारी व रमणीय प्रतीत हो ऐसा नाम-रूप-कर्मात्मक जगत् भी हिरण्मय है, जिसने आत्मतत्त्व को छिपा रखा है। मन भी हिरण्मय है जो हमारे अनन्तानन्द को छिपा देता है।

महेश्वर ही कृपा करके इसको दूर कर देते हैं। पर करते उसी के लिये हैं जो सत्यसनातन वैदिक धर्म का पालन करके स्वयं सत्यधर्म बन गया है। सत्य रूपी शिव की उपासना से ही सत्यधर्म वाला कहा जाता है।

अथवा सत्यधर्म अर्थात् अवितथभाव वाले सदाशिव के दर्शनार्थ यह प्रार्थना है। सदाशिव ब्रह्मरन्ध्र में हैं एवं कुण्डलिनी ग्रन्थिभेद से ही वहाँ पहुँच कर संगमानन्द लाभ करेगी। उसी से पोषण संभव है।

—१६—

पदच्छेदः

पूषन् एकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजः यत् ते रूपं कल्याणतमं तत् ते पश्यामि।
यः असौ असौ पुरुषः सः अहम् अस्मि।।

सान्वयार्थः

पूषन् = हे पोषण कर्ता महेश्वर!
एकर्षे = अकेले चलने वाले! (मुख्य एक ज्ञान वाले!)
यम = सर्व नियामक !
सूर्य = रश्मि, प्राण, रसों के स्वीकारक ! (अच्छी गति वाले !)
प्राजापत्य = प्रजापति की सन्तति ! (प्रजापति प्रिय !)
रश्मीन् = किरणों को (विश्व को)
व्यूह = अपने में लीन करो।
तेजः = जलाने वाले ताप को
समूह = नष्ट करो।
यत् = जो (प्रसिद्ध)
ते = तुम्हारा
कल्याणतमम्= शिवतम अति सुन्दर
रूपम् = रूप है
तत् = उसे
ते = तुम्हारी (कृपा से)
पश्यामि = देखूँ (या साक्षात् करता हूँ)।
यः = जो (प्रसिद्ध)
असौ = सूर्य मण्डलस्थ परोक्ष (शिव है)
असौ = (एवं) शास्त्र दृष्टि से प्रत्यक्ष
पुरुषः = आत्मा (देहस्थ शिव है)
सः = वही
अहम् = मैं
अस्मि = हूँ

तात्पर्य

कई सम्बोधनों से यहाँ परमात्मा के गुणों की स्मृति है। सबसे आगे चलने के कारण ही परमेश्वर मुख्य ज्ञानी है अतः वही एक ऋषि है। सभी ऋषि उसके आवेश से ही ज्ञानी माने जाते हैं। शिव की रश्मियाँ ही सारा जगत् है। वही हमारा प्राण है एवं जीवन का रस है। वह सर्वदा अच्छी गति से निरन्तर चलता ही रहता है। इसी लिये सूर्य है। वही शक्तिरूपी रश्मियों को बटोर कर प्रलय कर सकता

है। अतः हमारे अन्तःकरण के सामने से उन्हें हटा कर हमें आत्मज्ञान की सुलभता भी वही करा सकता है। संसार की आध्यात्मिक, आधिदैविक व आधिभौतिक दावाग्नि को भी हटाने में वही समर्थ है। आदित्यस्थ सूर्य व नेत्रस्थ सूर्य की ज्योतिरूप से एकता; अथवा शिव व जीव की चेतनरूप से एकता यहाँ प्रतिपादित करके स्पष्ट कर दिया कि वैदिक सदाशिव से नौकर की तरह नहीं, वरन् एकत्व ज्ञान के बल से ही कृपा याचना करता है। यहीं प्रसिद्ध 'सोहम्' मंत्र का कथन है। दृश्य व द्रष्टा का सर्वथा अभेद है।

सूरि अर्थात् विद्यावानों से जाना जाता है अतः सूर्य है। प्रजापति अर्थात् हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा को वेदोपदेश करता है अतः उसे प्रिय है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उसके ईशान रूप की ही यह प्रार्थना है।

—१७—

पदच्छेदः

वायुः अनिलम् अमृतम् अथ इदं भस्मान्तं शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर।।

सान्वयार्थः

वायुः	= प्राण (सूक्ष्म देह)	भस्मान्तम्	= भस्म में समाप्त हो। (अग्नि दाह का संस्कार हो)
अमृतम्	= नित्य (समष्टि सूत्रात्मा)	ॐ	= परमेश्वर का साक्षात् नाम लेता हूँ।
अनिलम्	= वायु को (प्राप्त हो)।	क्रतो	= संकल्परूप या ज्ञान रूप (शिव) !
अथ	= उसके बाद		
इदम्	= यह (स्थूल)		
शरीरम्	= देह		

स्मर	= (भक्त का) स्मरण कर।	स्मर	= स्मरण कर।
कृतम्	= की हुई उपासना व कर्म का	क्रतो स्मर कृतं स्मर	= भगवान् को याद दिलाने को वही अर्थ फिर से कहा गया।

तात्पर्य

प्राय: लोग यह समझते हैं कि जब शरीर मरकर यहीं भस्म हो जाता है तो फिर आगे क्या रहेगा? परन्तु यहाँ श्रुति कहती है कि जब प्राण भी नष्ट न होकर यहीं समष्टि में लीन होता है तो आत्मा का अभाव कैसे सिद्ध होगा?

यह एवं आगे के मंत्र मरते समय की प्रार्थना के हैं। अथवा प्रमाद ही मृत्यु होने से सदा स्मरण रखने के लिये हैं। जिनके लिये हमारा इतना यत्न है वे शरीर व प्राण यहीं रह जायेंगे, केवल कर्म और उपासना ही आगे साथ देंगे। प्राण या उससे द्योतित सूक्ष्म शरीर समष्टि में लीन होगा तो अमृत या मोक्ष प्राप्त होगा। सूक्ष्म शरीर या पुर्यष्टक ही दूसरे देह को प्राप्त करता है। ज्ञानकर्म से संस्कृत उत्क्रमण यहाँ है। देह का भस्म होना ही अन्तिम संस्कार है। अन्त में ॐ का ही उच्चारण कर्तव्य है। यही तारक मंत्र है जिसे काशी में विश्वनाथ सुनाते हैं। हमारे सभी कर्मों के फलस्वरूप परमेश्वर में उसके फलदान का संकल्प बनता है। अत: उसे संकल्परूप से याद किया कि 'मैं आपका भक्त हूँ, यही समय आपकी मदद पहुँचने का है। बाल्यपन से आजतक की मेरी सभी प्रवृत्तियों का स्मरण कर उनके अनूरूप फल दें। वैदिक को दृढ़ विश्वास होता है कि उसका जीवन क्रम शिव की प्रीति वाला ही है अत: वह घबराता नहीं। अथवा हे संकल्परूप मन ! अपने कर्मों का स्मरण कर। हे परमात्मा ! यदि

मुझ में आपका अन्तकाल में स्मरण करने की शक्ति न भी हो तो भी आप अवश्य मुझ भक्त का स्मरण कर लें। भगवान् जिनका स्मरण करेगा उनकी सद्गति में सन्देह ही क्या हो सकता है? जिसने इस सृष्टि की उन्नति में सहयोग किया है, सत्य धर्म का निरन्तर पालन किया है एवं सदा महेश्वर की भक्ति एवं उससे प्रेम किया है वही मरणक्षण में प्रसन्न रहता है।

—१८—

पदच्छेद:

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनः भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।

सान्वयार्थ:

अग्ने	= हे सर्वाग्रगामी प्रकाशरूप उमेश !	विद्वान्	= जानते हुए
सुपथा	= सुन्दर मार्ग द्वारा	अस्मत्	= हमसे
राये	= सुख (कर्म फल भोग) के लिये	जुहुराणम्	= (हमारे) कुटिल
नय	= ले जाओ।	एनः	= पापों से (पापों को)
देव	= हे देवाधिदेव महेश्वर!	युयोधि	= अलग करें (नष्ट करें)।
अस्मान्	= हमको (अपने भक्त को)	ते	= तुम्हें
विश्वानि	= (एवं) सारे	भूयिष्ठाम्	= बहुत बहुत
वयुनानि	= कर्मों को	नम उक्तिं	= 'नम:' कहने की
		विधेम	= सेवा करता हूँ। (इससे ही गौरीशंकर प्रसन्न हों।)

तात्पर्य

हम कितनी भी सावधानी से बर्ताव करें कभी न कभी दोष या पाप बन ही जाता है। अतः उमेश्वर से प्रार्थना है कि हमारे समग्र कर्मों को ध्यान में रखते हुए भूल चूक माफ कर देवें। कदाचित् की हुई बातों से मनुष्य का जीवन निर्णीत नहीं किया जा सकता। इस अन्तिम काल में मैं और कुछ भी तुम्हारी सेवा करने में असमर्थ हूँ अतः मुँह से ही 'नमः नमः' अर्थात् अपना नम्रभाव प्रकट करता हूँ।

दक्षिणायन से मैं तंग आकर उत्तरायण या सुपथ की कामना करता हूँ जिससे रै = सुख अर्थात् क्रम मुक्ति मुझे प्राप्त हो। कौटिल्य को ही वैदिक मार्ग सबसे बड़ा दोष मानता है, अतः उसको यहाँ स्पष्ट कह दिया। भगवद्धाम का वासी दोष निर्मुक्त ही बनता है। 'अस्मान् नय' भी अन्वय संभव है।

इस प्रकार ईशावास्योपनिषद् संक्षेप में वेद सार ही है।

कैवल्योपनिषद्

भगवान् ब्रह्मा स्कन्दपुराण में कहते हैं "कैवल्योपनिषत् परा परकृपायुक्ता यदुच्चैर्मुदा प्रोवाच प्रथितौजसैरपि हरिब्रह्मादिभिश्चाहतम्। हे देवा! अहम् उक्तवान् अतिशुभब्रह्मापरोक्षाय तत् सर्वेषाम् अधिकारिणाम् मतम् इदं वित्तातिभक्त्या सह।" अर्थात् भगवान् विष्णु और ब्रह्मा आदियों के द्वारा आदर पाई हुई एवं विद्वानों के द्वारा प्रसन्न हो उच्च स्वर से प्रतिपादित परमदयायुक्त परा विद्या ही कैवल्योपनिषद् है। हे देवताओं! अत्यन्त कल्याण स्वरूप परब्रह्म के अपरोक्षसाक्षात्कार के लिये ही मैंने उसका उपदेश दिया है। सभी अधिकारियों को अत्यन्त भक्ति से इसका मनन करना चाहिये।

अतः कृष्णयजुर्वेद में आई हुई यह उपनिषद् सभी परमहंस-परिव्राजकों के लिये नित्य पाठ करने का विषय है। प्रत्येक उपनिषद् शान्ति पाठ से प्रारम्भ होती है। इस वेद का शान्ति पाठ है—

शान्ति पाठ

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

वह सदाशिव निश्चित रूप से हमारी रक्षा करे। हमारा साथ साथ पालन करे। हम साथ साथ परिश्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी बने। हमारे बीच कभी द्वेष न उत्पन्न हो। आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक त्रिविध ताप शान्त हो जावें।

उपसत्ति

ॐ अथाश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच। अधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां सदा सद्भिः सेव्यमानां निगूढाम्। यया चिरात् सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं पुरुषं याति विद्वान्।

स्वाध्याय विधि के अनुसार वेद के कर्मकाण्ड का स्वाध्याय करने पर भी चित्त में शान्ति न उत्पन्न होने पर आश्वलायन महर्षि भगवान् ब्रह्मा के पास विधिवत् जाकर पूछते हैं "हे भगवन्! हमें सत्पुरुषों द्वारा सर्वदा ध्यान की जानेवाली उस अति गुप्त सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या का उपदेश करें जिससे ज्ञानी उपासक शीघ्र ही सारे पापों को जलाकर कार्य और कारण रूप से भी परे अनुत्तर सदाशिव को स्वहृदय में पुरुष रूप से प्राप्त कर लेता है।

ज्ञान साधन

तस्मै स होवाच पितामहश्च श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैही।।

ब्रह्माजी ने महर्षि से कहा कि श्रद्धा, भक्ति, ध्यान एवं योग के द्वारा ही उसे जानो।

न कर्मणा न प्रजया धनेन,
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
परेण नाकं निहितं गुहायां,
विभ्राजते यद् यतयो विशन्ति।।

किसी भी वैदिक-लौकिक या सकाम-निष्काम कर्मों से अनुत्तर सदाशिव की प्राप्ति संभव नहीं। और न वह पुत्र के द्वारा या धन अथवा उपासना के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उसे तो कोई विलक्षण धीमान् ही सर्वस्व त्याग द्वारा प्राप्त कर सके हैं। श्रीपरमहंस जिस परमानन्द स्वरूप

में प्रवेश करते हैं वह परमशिव सभी के हृदय में स्थित हो सर्वदा प्रकाशित हो रहा है।

मोक्ष का उपाय

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः,
संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले,
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

वेदान्तों से उत्पन्न जो अनुभव उसको संशयविपर्यय रहित रूप से जानने वाले एवं सर्वकर्म संन्यास रूपी ब्रह्मनिष्ठा का अभ्यास करने वाले शुद्धसत्त्व में स्थित श्रीपरमहंस देहाध्यास निवृत्त होने पर ब्रह्मरूपी लोक में अमरण धर्म सदाशिव को आत्मरूप से पा लेते हैं। तदनन्तर घट निवृत्ति से घटाकाश की निवृत्ति की तरह सभी आत्मज्ञानी विदेहकैवल्य प्राप्त कर लेते हैं।

ध्यान प्रकार

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः,
शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः।
अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि,
निरूध्य भक्त्या स्वगुरूं प्रणम्य।।

उसकी प्राप्ति का साधन एकान्त एवं शुद्ध देश में सुखासन से बैठकर अन्तः बाह्य शौच करके मेरुदण्ड को सीधा रख सिर गर्दन एवं शरीर को एक लम्ब में रखते हुये आश्रमातीत अवस्था में स्थित हो जाना

है। फिर प्रत्याहार के द्वारा अन्त:करण एवं इन्द्रियों का निरोध करके भक्ति पूर्वक ज्ञान प्रदाता अपने गुरु को आत्मनिवेदन रूप प्रणाम करना चाहिये।

निराकार ध्यान

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं,
विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं,
शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं,
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।।

उसके बाद विषयवासनात्मक रजोगुण से शून्य एवं शुद्ध हृदय कमल का (अनाहत चक्र का) चिन्तर करें। फिर उसमें सर्वव्यापक, शोक मोह से अतीत, बुद्धि के अविषय, नामरूपों से रहित, त्रिविध परिच्छेद शून्य, प्रशान्त, अमृत स्वरूप, वेदों को प्रकट करनेवाले, आदि मध्य और अन्त से रहित, अखण्डाद्वैत-रूप, विभु, और आनन्द स्वरूप, अत्यन्त आश्चर्य स्वरूप सदाशिव का ध्यान करें। यह साक्षी का ध्यान ही निराकार ध्यान कहा जाता है।

साकार ध्यान

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं,
त्रिलोचनं नीकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं,
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।

निराकार ध्यान में असमर्थ साधक ॐकार रूपिणी ब्रह्मविद्या को सहारा लेकर शक्तिविशिष्ट सदाशिव का ध्यान करें। वे परमेश्वर रूप होकर सबके मालिक हैं। सोम, सूर्य और अग्नि एवं ज्ञान, इच्छा और क्रिया रूप तीन नेत्र वाले हैं। स्फटिकके समान शुद्धरूप के एक देश कण्ठ में माया रूपी विष की नीलिमा उनको दयारूपता का उद्घोष कर रही है। अत्यन्त शान्तस्वरूप हैं। सारे जगत् के एकमात्र अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं, सारे जीवों के मन के साक्षी हैं। माया के तमोगुण कार्य अर्थात् पंचमहाभूतों से अस्पृष्ट हैं। सदाशिव के इस साकार ध्यान से उपासक परमेश्वर के मायातीत स्वरूप को पा लेता है।

एक परमेश्वर के अनेक रूप

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोग्निःस चन्द्रमा।।

यह ध्येय व ज्ञेय तत्त्व ही शास्त्रों में ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अक्षर, परम, स्वराज (स्वतन्त्र राजाधिराज), विष्णु, प्राण, काल, अग्नि चन्द्रमा आदि नामों से प्रतिपादित है।

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पंन्था विमुक्तये।।

जो कुछ हो चुका है, जो होनेवाला है एवं जो कुछ है वह सभी शिव ही है। सनातन तत्त्व भी वही है। उसका साक्षात्कार करके मृत्यु को साधक पार कर लेता है। कैवल्य मोक्ष का इससे भिन्न और कोई साधन या मार्ग नहीं है।

सर्वव्यापक आत्मा

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
संपश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना।।

आत्मा को सारे प्राणियों में स्थित एवं सरि भूतों को आत्मा में स्थित उस पर ब्रह्म का ध्यान करते हुये साधक उसमें लीन हो जाता है। उसमें लीन होने का और कोई भी साधन नहीं है।

प्रणव योग

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् पापं दहति पंडितः।।

वेदान्तों से आत्म-ज्ञान प्राप्त करके जो आत्मा को अरणि एवं ओंकार को उत्तरारणि बनाकर ज्ञानरूप मन्थन के अभ्यास को करता है वह पापों को जला डालता है। भाव यह है कि जिस प्रकार दो लकड़ियों को एकत्रित करके संघर्ष करने पर अग्नि प्रकट होती है उसी प्रकार अपनी आत्मा को ॐ कार से अभिन्न समझ कर वृत्ति के चंचल होने पर पुनः पुनः उसी चिन्तन में लगने से ही ज्ञान विज्ञान में बदल जाता है। विज्ञान ही पाप दाहक है। ब्रह्मनिष्ठा ही विज्ञान शब्द वाच्य है।

अवस्थात्रय

स एव मायापरिमोहितात्मा,
शरीरमास्थाय करोति सर्वम्।
स्त्रियन्नपानादिविचित्रभोगैः,
स एव जाग्रत् परितृप्तिमेति।।

वही सदाशिव अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति से अपनी ही स्वरूपभूता माया शक्ति से मोहित-सा होकर देह में अधिष्ठित होकर सारे कर्मों को करता है। पुनः कर्मों के फलरूप रमणी, भोजन, पान आदि अनेक प्रकार के भोगों के द्वारा अत्यन्त तृप्ति का अनुभव करता है।

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता
स्वमायया कल्पित जीवलोके।

मुग्ध शिव ही जीव बना स्वप्नकाल में उन स्वाप्न पदार्थों को जो केवल उसी जीव द्वारा अनुभूत होते हैं, रचकर अपनी ही अविद्या से उन पदार्थों के द्वारा सुख दुःख का भोग करता है।

सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोभिभूतः सुखरूपमेति।।

गहरी नींद में कार्यप्रपंच के विलय हो जाने पर अज्ञानांधकार से अभिभूत हो आनन्दरूपता को प्राप्त कर लेता है।

पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्,
स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः।

सुषुप्ति के बाद पूर्वजन्मों में अनुष्ठित कर्मों के संस्कार रूपी सम्बन्ध से वही जीव फिर से स्वप्न या जाग्रत् अवस्था में जाता है।

पुरत्रये क्रीडति यश्च जीव-
स्ततः सुजातं सकलं विचित्रम्।।

इस प्रकार जो जीव जाग्रत् स्वप्न एवं सुषुप्ति रूपी त्रिपुर में रमण करता रहता है उसी के द्वारा एवं उसी के लिये यह सुन्दर व सुखप्रद (न कि दुःखप्रद) सारा जगत् उत्पन्न हुआ है।

जगत् कारण

आधारमानन्दमखण्डबोधं,
यस्मिन् लयं याति पुरत्रयं च।।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्यधारिणी।।

जिस अधिष्ठान रूप अखण्ड चिन्मात्र आनन्दस्वरूप में त्रिपुर लीन होता है उसी महेश्वर से प्राण, मन, सारी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल, विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी आदि सभी उत्पन्न सा होता है। भाव है कि जगत् की असत्यता के कारण शिव अधिष्ठान कहे जाते हैं, दृश्य साक्षी होने के कारण चित् कहे जाते हैं, परमप्रेमास्पद होने के कारण आनन्द कहे जाते हैं और त्रिविध भेद से रहित होने के कारण अखण्ड कहे जाते हैं। जगत् में सत्यता की प्रतीति के कारण ही शिव उसके कारण कहे जाते हैं।

जीव-ब्रह्म की एकता

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत्।।

जो सदाशिव नित्य परमव्यापक, सबका आत्मस्वरूप, विश्व का आधार एवं सर्वापेक्षा महान् होते हुए भी सूक्ष्मतम तत्त्व है वही तुम हो और तुम ही वह है। अर्थात् उसमें और जीव में सर्वथा अभेद है।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपंचं यत् प्रकाशते।
तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि समस्त प्रपंचों को जो प्रकाश देता है (अर्थात् जानता है) वही ब्रह्म मैं हूं ऐसा अनुभव करके सारे बन्धनों से सदा के लिये मुक्त हो जाता है।

त्रिषु धामसु यद् भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद् भवेत्।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोहं सदाशिवः।।

तीनों अवस्थाओं में भोग्य पदार्थ, भोक्ता जीव और भोग कर्म रूप से जो बनता है उस मायाविशिष्ट से विलक्षण उनका साक्षी चिन्मात्र सदाशिव ही सच्चा 'मैं' है।

स्वानुभव

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्व लयं याति तद् ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्।।

मुझ अधिष्ठान में ही रस्सी में सर्प की तरह सब उत्पन्न हुआ है, मुझ में ही प्रतिष्ठित है एवं अन्त में मुझमें ही लीन हो जाता है। अतः अद्वितीय ब्रह्म ही मैं हूँ।

अणोरणीयानहमेव तद्वन्-
महानहं विश्वमहं विचित्रम्।
पुरातनोहं पुरुषोहमीशो,
हिरणमयोहं शिवरूपमस्मि।।

मैं ही अणु से भी अणुतर एवं निरपेक्ष महान् भी मैं ही हूं। अनेक नामरूपात्मक धारण करके मैं ही विश्व हूँ। प्राचीनतम पुरुष सबका अधिपति, सूर्यमण्डलाधिष्ठाता हिरण्यगर्भ भी मैं ही हूँ। सर्वाधिष्ठान शिव ही मेरा वास्तविक रूप है।

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः।
अहं विजानामि विविक्तरूपो,
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम्।।

हाथ पैर रहित होकर भी कल्पनातीत शक्तिवाला सदाशिवस्वरूप होने से मैं विना आँख के देखता हूँ एवं विना कान के सुनता हूँ। नामरूप से रहित मेरा वास्तविक रूप है। मैं सामान्य और विशेष रूप से सभी कुछ जानता हूँ पर मुझे जाननेवाला कोई भी नहीं है। मैं सदा ही चैतन्यमात्र हूँ।

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेवचाहम्।
न पुण्यपापे मम नास्ति नासो न जन्मदेहेन्द्रियबुद्धिरस्ति।
न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेस्ति न चाम्बरं च।।

सारे वेदों के द्वारा मैं ही जाना जाता हूँ। वेद के सिद्धान्तों का निर्माण करनेवाला मैं ही हूँ। वेद रहस्य को भी मैं ही जानता हूँ। न मुझे पाप स्पर्श करता है और न पुण्य ही। मैं न जन्म से सम्बन्धित हूं, न मृत्यु से एवं न देह, इन्द्रियों और मन से ही। मैं भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश से भी सम्बन्ध वाला नहीं हूँ।

ज्ञान का फल

एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम्।
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम्।।

इस प्रकार बुद्धिरूप गुफा में रहनेवाले परमात्मा के रूप का कलाहीन और अद्वितीय भाव से सर्व साक्षी रूप एवं कार्य और कारण से रहित रूप को जानकर निरन्तर उसी में निष्ठ रहने वाला पुरुष निर्गुण परमात्म रूप में लीन हो जाता है।

सामान्य साधन

उपर्युक्त साधनों को करने में असमर्थ पुरुष के लिये असमर्थता की पापजन्यता बताते हुए उसकी निवृत्ति के साधनों का निरूपण करते हैं—

यः शतरुद्रीयमधीते सोग्निपूतो भवति, स वायुपूतो भवति, स आत्मपूतो भवति, स सुरापानात्पूतो भवति, स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति, स सुवर्णस्तेयात् पूतो भवति, स कृत्याकृत्यात् पूतो भवति। तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवत्यत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेत्। अनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनम्। तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्यं पदमश्नुते कैवल्यं पदमश्नुत इति। ॐ।।

जो शतरुद्री का जप करते हैं वे अग्निनिमित्तक दोषों से रहित हो जाते हैं। अथवा अग्नि से होनेवाले सभी कर्मों (याग, होम, यज्ञ आदि) से होनेवाली पवित्रता को पा लेते हैं। रुद्रजपी वायुनिमित्तक पापों से छूट जाते हैं। अथवा प्राणायाम से होनेवाली अन्त:शुद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। उपलक्षणा से आकाश, जल और पृथ्वी निमित्तक पापों की निवृत्ति भी समझ लेनी चाहिए। रुद्रजपी अन्त:करण के द्वारा किये पापों से भी पवित्र हो जाता है। अथवा आत्मानुसन्धान जन्यफल को भी पा लेता है।

रुद्राध्यायी सुरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्ण चोरी आदि महापापों से भी छूट जाता है। उसके विहित के न करने से होनेवाले एवं निषिद्ध करने से होनेवाले पाप भी दूर हो जाते हैं।

इसलिये ब्रह्मनिष्ठ गुरु का आश्रय लेकर अथवा काशी में रहकर या भ्रूमध्य में ध्यान करते हुए आश्रमातीत होकर सर्वदा या कम से कम एकबार अवश्य रुद्री का पाठ करें। इससे भी संसार समुद्र के नाश करनेवाले ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अत: इस प्रकार से भी आत्मा को जानकर कैवल्य की प्राप्ति निश्चित रूप से हो जाती है।

—इति—

रुद्रहृदयोपनिषतत

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

ॐ।। हृदयं कुण्डली भस्मरुद्राक्षगणदर्शनम् ।
तारसारं महावाक्यं पञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम् ।।१।।

प्रणम्य शिरसा पादौ शुको व्यासमुवाच ह ।
को देवः सर्वदेवेषु कस्मिन्देवाश्च सर्वशः ।।२।।

कस्य शुश्रूषणान्नित्यं प्रीता देवा भवन्ति मे ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पिता शुकम् ।।३।।

सर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः।
रुद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे रविर्ब्रह्मा त्रयोऽग्नयः ।।४।।

वामपार्श्वे उमा देवी विष्णुः सोमोऽपि ते त्रयः ।
या उमा सा स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स हि चन्द्रमाः ।।५।।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम् ।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ।।६।।

ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम् ।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम् ।।७।।

रुद्रात्प्रवर्तते बीजं बीजयोनिर्जनार्दनः ।
यो रुद्रः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः ।।८।।

ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्नीषोमात्मकं जगत् ।
पुंलिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं भगवत्युमा ।।९।।

उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम् ।।१०।।

उमा शंकरयोगो यः स योगो विष्णुरुच्यते ।
यस्तु तस्मै नमस्कारं कुर्याद्भक्ति समन्वितः।।११।।

आत्मानं परमात्मानमन्तरात्मानमेव च ।
ज्ञात्वा त्रिविधमात्मानं परमात्मानमाश्रयेत् ।।१२।।

अन्तरात्मा भवेद्ब्रह्मा परमात्मा महेश्वरः ।
सर्वेषामेव भूतानां विष्णुरात्मा सनातनः ।।१३।।

अस्य त्रैलोक्यवृक्षस्य भूमौ विटपशाखिनः ।
अग्रं मध्यं तथा मूलं विष्णुब्रह्ममहेश्वराः ।।१४।।

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः।
प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा कृता ।।१५।।

धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः ।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः ।।१६।।

कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ।।१७।।

रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।।१८।।

रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ।।१९।।
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।।२०।।
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ।।२१।।
रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो गन्ध उमा पुष्पं तस्मै तस्यै नमो नमः ।।२२।।
रुद्रोऽर्थ अक्षरः सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो लिङ्गमुखा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ।।२३।।
सर्वदेवात्मकं रुद्रं नमस्कुर्यात्पृथक्पृथक् ।
एभिर्मन्त्रपदैरेव नमस्यामीशपार्वतीम् ।।२४।।
यत्र यत्र भवेत्सार्धमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
ब्रह्महा जलमध्ये तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२५।।
सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।
सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम् ।।२६।।
तस्मिन्सुविदिते सर्वं विज्ञातं स्यादिदं शुक्र ।
तदात्मकत्वात्सर्वस्य तस्माद्भिन्नं नहि क्वचित् ।।२७।।
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते ।
तत्रापरा तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च ।।२८।।

सामवेदस्तथाथर्ववेदः शिक्षा मुनीश्वर ।
कल्पो व्याकरणं चैव निरुक्तं छन्द एव च।।२९।।
ज्योतिषं च यथा नात्मविषया अपि बुद्धयः ।
अथैषा परमा विद्या ययात्मा परमाक्षरम् ।।३०।।
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रं रूपवर्जितम् ।
अचक्षुःश्रोत्रमत्यर्थं तदप्राणिपदं तथा ।।३१।।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तदव्ययम्।
तद्भूतयोनिं पश्यन्ति धीरा आत्मानमात्मनि ।।३२।।
यः सर्वज्ञः सर्वविद्यो यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादत्रान्नरूपेण जायते जगदावलिः ।।३३।।
सत्यवद्भाति तत्सर्वं रज्जुसर्पवदास्थितम्।
तदेतदक्षरं सत्यं तद्विज्ञाय विमुच्यते ।।३४।।
ज्ञानेनैव हि संसारविनाशो नैव कर्मणा ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद्यथाविधि ।।३५।।
गुरुस्तस्मै ारां विद्यां दद्याद्ब्रह्मात्मबोधिनीम्।
गुहायां निहितं साक्षादक्षरं वेद चेन्नरः।।३६।।
छित्त्वाऽविद्यामहाग्रन्थिं शिवं गच्छेत्सनातनम्।
तदेतदमृतं सत्यं तद्बोद्धव्यं मुमुक्षुभिः ।।३७।।
धनुस्तारं शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।३८।।

लक्ष्यं सर्वगतं चैव शरः सर्वगतो मुखः ।
वेद्धा सर्वगतश्चैव शिवलक्ष्यं न संशयः ।।३९।।

न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते न
वान्ति वाताः सकला देवताश्च।
स एष देवः कृतभावभूतः
स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते।।४०।।

द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिञ्जीवेशाख्यौ सह स्थितौ।
तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते कर्मणो न महेश्वरः।।४१।।

केवलं साक्षिरूपेण विना भोगं महेश्वरः ।
प्रकाशते स्वयं भेदः कल्पितो मायया तयोः।।४२।।

घटाकाशमठाकाशौ यथाकाशप्रभेदतः ।
कल्पितौ परमौ जीवशिवरूपेण कल्पितौ ।।४३।।

तत्त्वतश्च शिवः साक्षाच्चिज्जीवश्च स्वतः सदा।
चिच्चिदाकारतो भिन्ना न भिन्ना चित्त्वहानितः।।४४।।

चितश्चिन्न चिदाकाराद्भिद्यते जडरूपतः ।
भिद्यते चेज्जडो भेदश्चिदेका सर्वदा खलु।।४५।।

तर्कतश्च प्रमाणाच्च चिदेकत्वव्यवस्थितेः
चिदेकत्वपरिज्ञाने न शोचति न मुह्यति ।।४६।।

अद्वैतं परमानन्दं शिवं याति तु केवलम् ।।४७।।

अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः सत्यचिद्घनम् ।
अहमस्मीति निश्चित्य वीतशोको भवेन्मुनिः।।४८।।

स्वशरीरे स्वयं ज्योतिः स्वरूपं सर्वसाक्षिणम् ।
क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृताः ।।४९।।
एवं रूपपरिज्ञानं यस्यास्ति परयोगिनः ।
कुत्रचिद्गमनं नास्ति तस्य पूर्णस्वरूपिणः ।।५०।।
आकाशमेकं संपूर्णं कुत्रचिन्नैव गच्छति ।
तद्वत्स्वात्मपरिज्ञानी कुत्रचिन्नैव गच्छति ।।५१।।
स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म यो वेद वै मुनिः ।
ब्रह्मैव भवति स्वस्थः सच्चिदानन्दमातृकः।।५२।।
इत्युपनिषत्।।

।। ॐ सह नाववत्विति शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। ॐ ।।

इति रुद्रहृदयोपनिषत्समाप्ता।।

[illegible]

महेश अनुसन्धान संस्थानम्
श्री दक्षिणामूर्ति मठ
डी ४९/९ मिश्र पोखरा
वाराणसी - २२१०१०
फोन नं॰ ३५०६५४

मुद्रक :
ग्राफिक्स आर्ट प्रिन्टर्स
डीग गेट, मथुरा